Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. 19, Issue No. 1, January-2022, ISSN 2230-7540

हिंदी भक्तिकाल के वैचारिक परिदृशय का अध्ययन

राजेन्द्र कुमार पिवहरे*

सहायक प्राध्यापक (हिन्दी)

शासकीय महाविद्यालय वेंकटनगर जिला - अनूपपुर(म.प्र.)

अवधेश प्रताप सिंह वि०वि०रीवा (म.प्र.)

सार - भक्तिकालीन साहित्य भारतीय समाज के साथ सम्पूर्ण विश्व समाज को यह प्रेरणा देता है कि हम मनुष्य हैं और हमें इस दुनिया को मानवीय दुनिया बनाने का अनवरत् प्रयोग करते रहना है, जिसका प्रमुख सूत्र है प्रेम। यह प्रेम ही वह आध्यात्मिक तत्व है, जो मनुष्य को देह में रहते हुए उससे विस्तृत और महामानव बना देता है। कबीर का सामाजिक समानता का भाव, सूफी साहित्य का चरम आध्यात्मिक मानवीय प्रेम, राम और कृष्ण के लोकरक्षक रूप से जिस वैचारिक प्रतिबद्धता का प्रस्फुटन होता है वह सम्पूर्ण विश्व को एक प्राकृतिक मानवीय विश्व में बदलने में सक्षम है। अतः स्पष्ट है कि हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल को क्यों स्वर्ण युग कहा गया है। स्वर्ण युग का तात्पर्य है कि इस काल की रचनाओं में जो वैचारिक उदातता है, मानवीयता है, समानता और सामाजिक समरसता की भावना है, सभी प्रकार के भेदभाव से मुक्ति का मार्ग है। इसीलिए इस समूचे कालखण्ड को स्वर्ण युग की संज्ञा दी गई है। मानव से मानव बने रहने का जैसा आग्रह भक्तिकालीन साहित्य की विविध धाराए अपने-अपने स्तर पर करती हैं, विश्व की किसी भाषा में एसा समूचा काल देखने को नहीं मिलता।

कीबर्ड- हिंदी भक्तिकाल, वैचारिक परिदृशय

----------X----------

परिचय

भारतवर्ष धर्म प्रधान देश है। इस विशाल देश में अनेक विविधताएँ हैं, परन्तु संस्कृति, सभ्यता और देश की आत्मा एक है। इस अनेकत्व में एकत्व की भावना का होना भारतवर्ष की सबसे बड़ी विशेषता है। उक्त क्रम में ही यहाँ भक्ति के क्षेत्र में अनेक धर्म, सम्प्रदाय और मत हैं, जिसका वैविध्य भारतीय इतिहास की एक अनिवार्य और विशिष्ट परिणति है, जिसका समन्वय भी भारतीय समाज के चिन्तन का लोक कल्याणकारी मूलाधार रहा है। 'भक्ति' की अवधारणा लोक में अतिप्राचीन है, जिसके बीज वैदिक साहित्य में अवस्थित हैं। इस बीज का प्रस्फुटन या अंकुरण कालान्तर में पुराण साहित्य में दिखाई पड़ता है, जो कालान्तर में भागवत-धर्म के विशाल वट-वृक्ष के रूप में परिलक्षित हुआ। इसी वृक्ष के नीचे बैठकर ज्ञानी, संत, आचार्य, भक्त, दार्शनिक, चिन्तक एवं कवि आदि लोक कल्याण के प्रति सदैव चिन्तन-मनन करते रहे। भक्ति रूपी वृक्ष की शीतल छाया का जो अनुभव इन सुधीजनों ने प्राप्त किया, वह सारे संसार को अपनी भाषा में कह डाला।

भक्ति : अवधारणा और स्वरूप

भक्ति मानव-जीवन से जुड़ा तत्व है, जीवन प्रवाह के साथ भक्ति तत्व भी प्रवाहित होता रहा है। भक्ति मानव जाति का सर्वस्व है, प्रत्येक मनुष्य इसी के आधार पर अपने कल्याण की इच्छा करता है और इसी से कल्याण होने का दृढ़ विश्वास रखता है। भक्ति के लक्षणों की चर्चा करते हुए विद्वानों ने कहा है कि भक्ति शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत भाषा के भज् धातु में श्क्तिन्श् प्रत्यय के योग से हुई है। श्क्तिन्श् प्रत्यय का अर्थ है प्रेम और भज् धातु का अर्थ है सेवा करना । धातु और प्रत्यय के योग से एक सम्पूर्ण अर्थ की अभिव्यक्ति होती है और उस अर्थ में प्रत्यय का अर्थ ही प्रधान रहता है। इस प्रकार भज् धातु का अर्थ भक्ति शब्द को सेवा करने के रूप में निष्पादित करता है। अतः भक्ति शब्द का अर्थ श्सेवा करनाश् जान सकते हैं। दूसरे अर्थों में ईश्वर के चरणों में पूर्णरूप से आत्मसमर्पण कर देना या ईश्वर में पूर्णतः अनुरक्त हो जाना ही भक्तिकहलाता है।

www.ignited.in

भक्ति शब्द का प्रयोग प्राचीन काल से होता आया है। प्राचीन ग्रंथों से लेकर आधुनिक -- युग के लेखकों ने भक्ति को परिभाषित किया है, जिनका विवेचन निम्नलिखित है श्रीआद्यशंकराचार्य की श्विवेक चूडामणिश् में भक्ति सम्बन्धी मान्यता है कि वास्तविक स्वरूप का अनुसंधान ही भक्ति कहलाता है और कभी स्वात्मतत्त्व का भी अनुसंधान भक्ति ही है-

"**स्वस्वरूपानुसंधानं भक्तिरित्यभिधीयते ।**

स्वात्मतत्त्वानुसंधानं भक्तिरित्यपरे जगुः ।। "

उपनिषद् साहित्य में भक्ति

भक्ति भावना के विकास इतिहास में उपनिषदों का महत्वपूर्ण स्थान है। इनकी संख्या अधिक है, पर कुछ प्रमुख उपनिषदों श्वेताश्वेतर, ईश, केन, कठ, माण्डूक्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय, छान्दोग्य और वृहदारण्यक आदि में भक्ति दर्शन के तत्त्व निहित हैं। भक्ति के स्वरूप को व्याख्यायित करने में उपनिषदों का अपना एक अलग महत्व है। ऋग्वेद में मुख्य रूप से दो प्रकार के विषय हैं- कर्मकाण्ड और ज्ञानकाण्ड। कर्मकाण्ड का विकास ब्राह्मणों में और ज्ञानकाण्ड का विकास उपनिषदों में हुआ। उपनिषद् साहित्य में भक्ति के स्वरूप और अवधारणा के सम्बन्ध में विद्वानों की मान्यता है कि भक्ति की दृष्टि से उपनिषदों का भक्ति चिन्तन-दर्शन वैदिक साहित्य का आगामी विकास है।

श्वेताश्वेतरोपनिषद्, मैत्र्युपनिषद्, छान्दोग्योपनिषद्, मुण्डकोपषिद्, आदि उपनिषदों में शिव, रुद्र, विष्णु, अच्युत, नारायण आदि की उपासना या भक्ति की गयी है। इसमें भक्ति उपासना के रूप में दिखाई पड़ती है, जो भगवान् के प्रति प्रेम के अर्थ में प्रयुक्त हुई है। यहीं पर विवेचन है कि ईश्वर आदि प्रकृति के साथ जीव का संयोग कराने में कारणों का भी कारण, त्रिकालातीत तथा कालहीन है। उस विश्वरूप, संसाररूप में स्थित, स्तवनीय तथा सनातन देव को अपने अंतःकरण में स्थित परमदेव मानकर उसकी उपासना करनी चाहिए- ष्आदिः स संयोगनिमित्तहेतुः परस्त्रिकालादकलोऽपि दृष्टिरू तं विश्वरूपं भवभूतमीडयं देवं स्वचित्तस्थमुपास्य पूर्वम् ।। भक्ति का जो रस महाभारत और गीता में मिलता है, वह उपनिषदों से पर्याप्त साम्य रखता है। उपनिषदों की भक्ति में आडम्बर नहीं है, बल्कि अंतःसाधना पर बल दिया गया है। उसमें सत्यान्वेषण की जिज्ञासा है एवं गुरु का महत्व सर्वोपरि है, जिसके बिना ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता।

अध्ययन के उद्देश्य

1. तुलसीदास का वैपारिक परिदृश्य और भारतीय समाज का अध्ययन
2. उपनिषद् साहित्य में भक्ति का अध्ययन

लौकिक एवं सूत्र काल में भक्ति

भारतीय वाङ्मय के लौकिक ग्रंथ 'रामायण', 'महाभारत' एवं 'श्रीमद्भगवदगीता' भक्ति का प्रचार-प्रसार करने वाले प्रमुख स्रोत हैं। उपनिषदों के बाद भक्ति की धारा पूरे प्रखर वेग से प्रवाहित हुई। 'रामायण' में वाल्मीकि ने अनेक स्थलों पर 'भक्ति' शब्द का प्रयोग किया है, यह प्रयोग सम्भवतः लौकिक सम्बन्धों के प्रति आदर एवं श्रद्धा के अर्थ में है। इस आदर और श्रद्धा का प्रकटीकरण विभिन्न सम्बन्धों माता-पिता, भाई-बहन, पति-पत्नि, राजा-प्रजा, गुरु-शिष्य आदि अनेक स्तरों पर हुआ है। सीता की भक्ति के सम्बन्ध में उक्ति है कि हे महाभाग! मैंने सीता को बड़ी भक्ति के साथ तपस्या करते देखा- ''एवं मया महाभागदृष्टा जनकनंदिनी। उग्रेण तपसा युक्ता त्वद्भक्त्या पुरुषर्षथ।।'' इसी प्रकार अन्यत्र लक्ष्मण की रामभक्ति का भी उल्लेख है। लिखित है कि हे लक्ष्मण! मैं तुम्हारे भक्ति और पराक्रम को जानता हूँ- ''अहं हि ते लक्ष्मण नित्मेव जानामि भक्ति च पराक्रम च।'

कबीरदास का वैचारिक परिदृश्य और भारतीय समाज

राम मोहिं तारि कहाँ लै जैहो।

सो बैकुण्ठ कहो यूँ कैसा, करि पसाव मोहि देहो।।

जो मेरे जीव दोइ जानत है, तो मोहिं मुकति बताओ।

एकमेव रमि रह्या सबनि में, तो काहे भरमाओ।।

तारण तिरण जबै लनि कहिये, तब लग तत्त न जाना।

एक राम देख्या सबहिन में, कहैं कबीर मनमाना।।

कबीर हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल में संत, भक्त, कवियों एवं समाज सुधारकों में कबीरदास का स्थान अद्वितीय है। भारतीय समाज में कबीर का प्रादुर्भाव ऐसे समय में हुआ जब समाज में सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक संघर्ष चरम पर था। सामाजिक परिस्थितियाँ विच्छिन्न थी, धार्मिक परिस्थितियों में अनेक मतवाद थे और राजनीतिक परिस्थितियों में अस्थिरता और सांस्कृतिक धारा विछिन्न थी। समाज को रूढ़िवादी परम्परा की संकीर्ण विचारधाराओं- बाह्याडम्बर, अंधविश्वास, छुआछूत, हिंसा, सांप्रदायिकता, जाति-पांति एवं ऊँच-नीच आदि ने जकड़ रखा था। ऐसी विषम

www.ignited.in

परिस्थितियों में कबीर ने लोककल्याण के लिए इन सबसे लोहा लिया।

कबीर-साहित्य पर भारतीय और अभारतीय अनेक विद्वानों ने अनुशीलन किया है। भक्तिकाल के महान युगपुरुष संत कबीर के विषय में विद्वानों व आलोचकों के विविध मत हैं

डॉ. रामकुमार वर्मा कबीर के संदर्भ में लिखते हैं कि- ष्कबीर का आविर्भाव जैसे इन राजनीतिक, धार्मिक और सामाजिक परिस्थितियों का एक आग्रहपूर्ण आमन्त्रण था और कबीर ने धर्म और समाज के संघटन के लिए समस्त बाह्याचारों का अंत करने और प्रेम से समान धरातल पर रहने का एक सर्वमान्य सिद्धान्त प्रतिपादित किया।

इस प्रकार कबीर युगावतारी शक्ति और विश्वास लेकर पैदा हुए थे और युग प्रवर्तक की दृढ़ता उनमें वर्तमान थी, इसीलिए वे युग का प्रवर्तन कर सके थे। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में, "कबीर, सिर से पैर तक मस्तमौला, स्वभाव से फक्कड़, आदत से अक्खड़, भक्त के सामने निरीह, भेषधारी के आगे प्रचंड, दिल से साफ, दिमाग के दुरूस्त, भीतर से कोमल, बाहर से कठोर, जन्म से अस्पृश्य, कर्म से वन्दनीय। सच्चे अर्थों में कबीर का सम्पूर्ण साहित्य मानव मूल्यों की व्याख्या करता है। कबीर के काव्य को पढ़ते समय यह बोध होता है कि भारतीय मुनि परम्परा में एक विलक्षण, मेधावी और जबरदस्त स्मृति के व्यक्ति में जो आध्यात्मिक अनुभव और मूल्य विषयक संस्कार सहज ही में ग्रहण हों, वे कबीर ने किये थे। कबीर ने किसी परम्परा का अनुसरण उस प्रकार नहीं किया, जिस प्रकार अन्य कवियों ने किया है।

डॉ. रामकिशोर शर्मा का मत है कि, "कबीर के विषय में अपना मत प्रस्तुत करने वाले न तो गतानुगतकों की कमी है और न क्रान्तिकारियों की। ऐसी परिस्थिति में यदि हम यही कहें कि श्कबीर जैसा है तैसा रहे, तू बानी के गुन गायश्- यह पंक्ति कबीर की उसी उक्ति की नकल पर रची गयी, जिसमें कबीर ने कहा है कि श्हरि जैसा तैसा रहै, तू हरषि-हरषि गुन गायश्। कबीर के जन्म स्थान का श्रेय चाहे जिस गाँव, नगर, प्रदेश, देश को दिया जाय, उनकी जाति-पाँति का चाहे जो निर्धारण किया जाय; लेकिन कबीर की सृजनशीलता के विविध पक्षों का जो रूप एवं जो महत्व हमारे सामने है उसको न न्यून किया जा सकता है और न ही उसे नकारा जा सकता है। जो साधक जीवन-पर्यन्त जाति-पाँति, देश-काल की सीमाओं के विरूद्ध संघर्षरत रहा है, उसकी उन्हीं सीमाओं की तलाश, अपने आप में कितनी सार्थक होगी। फिर भी एक महान रचनाकार के जीवन-सूत्रों और उसके सृजनात्मक परिवेश के अन्वेषण को नितान्त महत्वहीन भी नहीं किया जा सकता है।

जायसी का वैचारिक परिदृश्य और भारतीय समाज

एक बार जो मनु के सेवा।

सेवहिं फल परसन होइ देवा।।

सुनि के सबद मॅडम झनकारा।

बैठा आइ पुरुब के बारा।।

पिंड चढाइ छार जेत आँटी।

माँटी होउ अंत जौ माटी।।

गाँटी मोल न किछु लहै औ माँटी सब मोल।

दिस्टि जो माँटी सों करै माँटी होइ अमोल।।

जायसी मलिक मुहम्मद जायसी भक्तिकालीन लोक प्रवाही काव्य परम्परा के अन्यतम प्रतिनिधि कवि हैं। इन्होंने समाज में व्याप्त हिन्दू-मुस्लिम एकता और विविध धर्मों के कट्टरपन का शमन ही नहीं किया, बल्कि सूफीमत के प्रेमराब से लोकमानस को आप्लावित करने अनूठा कार्य किया। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और बाद के आलोचकों ने जायसी के अवदान पर समुचित प्रकाश डाला है। आधुनिक कवि-आलोचक विजयदेव नारायण साही ने उनके विशुद्ध कवि के रूप में प्रतिष्ठित करने का महत्वपूर्ण कार्य किया है। जायसी के सूफीकाव्य में अखण्ड भारतीय संस्कृति के प्रभाव को पूरी शिद्दत के साथ देखा जा सकता है।

सर्वप्रथम जायसी को सूफी सम्प्रदाय के चैखटे में कसने की शुरुआत ग्रियर्सन ने की थी। इन्होंने जायसी को मुस्लिम एसेटिक, अर्थात् मुसलमान संन्यासी कहा है और उनकी साम्प्रदायिक लोकप्रियता का बखान किया है। जायसी के सम्बन्ध में ग्रियर्सन के कुछ वक्तव्य इस प्रकार हैं- "--The Preservation of the Padmavati is due mainly to the happy accident of Malik Muhammad's reputation-Although pro&foundly affected by the teachings of Kabir and familiarly acquainted the first reserved as a saint by his Muhammadan co&relgionists---His work is a valuable witness to the actual condition of the ver&nacular language of Narthern India I the sixteenth century

तुलसीदास का वैपारिक परिदृश्य और भारतीय समाज

अंजल करवि कलिजल हरति, तुलसी कथा रघुनाथ की।

अति कूर कविता सरित की ज्यों, सरित पावन पाथ की।

प्रभु जुजस संजति अनिति अलि, होइहि सुजन व आवती।

अव अंग अंग भूति अज्ञात की, सुजिरत सुहावति पावनी।।

-तुलसीदास भारतीय समाज प्राचीन काल से ही विविधताओं का देश है और यही उसकी सुन्दरता और खासियत भी है। ऐसा देश विश्व में शायद ही कोई हो। इस देश में भूमि को माता और आकाश को पिता माना गया है- जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरियसी। यहाँ पर अनेक धर्म, साहित्य, संस्कृति एवं कलाओं का सुन्दर समन्वय किया गया, जिसका उपयोग लोक कला के अर्थ में किया जाता था। कहा जाता है कि समय के साथ परिवर्तन होना स्वाभाविक है। इसी अर्थ में भारत में कई विदेशी आक्रमणों से भारतीय समाज की संस्कृति छिन्न-भिन्न हो गयी। यहाँ पर आसीन सत्ताधारी सम्पन्न वर्ग धर्म, साहित्य और संस्कृति के परिवर्तन का उपयोग अधिकांशतः अपने निजी स्वार्थ के हित में करने लगे। धीरे-धीरे समाज में अंधविश्वास, पाखण्ड और बाहयाचार बढ़ता गया। समाज में सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक विषमताएं आने लगी। इन विषमताओं को दूर करने में तुलसीदास का विशिष्ट योगदान रहा है।

आज भारतीय हिन्दू समाज में तुलसी जन-जन के विचारों में विद्यमान हैं। तुलसी की रामकथा हमें जीवन के प्रत्येक मोड़ पर भारतीय संस्कृति की एक नई राह प्रदान करती है। "गोस्वामी जी ने हमारी आध्यात्मिक और भौतिक समस्याओं को सुलझाने का प्रयत्न किया है। राम सीता, भरत, दशरथ, कोशल्या, लक्ष्मण, हनुमान आदि के त्याग, प्रेम, सेवा और कर्तव्य- पूर्ण चरित्र. ईष्र्या, द्वेष, वैर, संघर्ष से जर्जरित समाज के लिए अमृतमयी नवीन जीवन-दायिनी औषधि है। तुलसी ने मानस की रचना अपने युग की आध्यात्मिक समस्या का समाधान करने के लिए की थी। वह यह है कि ईश्वर साकार है या निराकार तुलसी ने यह सिद्ध करके दिखा दिया की यह तर्क का विषय नहीं, अनुभव और विश्वास का विषय है। यह निराकार, निर्विकार होते हुए भी सगुण और साकार है। अपने विश्वास और आस्था के बल पर हम उसे इस रूप में अनुभव कर सकते हैं। जीवन का प्रमुख ध्येय उसी का साक्षात्कार करना है और इसका सुगम उपाय है-भक्ति।ष् इनके काव्य में हमारे जीवन की समस्त सामाजिक एवं आध्यात्मिक समस्या का हल है।

सूरदास का वैचारिक परिदृष्य और भारतीय समाज

साहित्य संगीतकलाप्रवीणरू श्रीनाथसेवानिरतश्च शाश्वत्।

सुदृष्टिहीनोऽपि हि दिव्यदृष्टिहर्यघ्रि भृङ्गः कविसूरदासः।।

सूखंथावली भक्तिकाल के प्रबल और प्रतिकूल वातावरण के तूफान में भक्ति और ज्ञान का द्वीप प्रज्ज्वलित रखने का कार्य आचार्यों, संतों, भक्तों और कवियों ने किया। भक्त सूरदास को भी ऐसे ही एक महान गुरु बल्लभाचार्य का सम्पर्क और मार्गदर्शन मिला, जिनके प्रसाद से वे अपने युग के भक्त, कवि और समाज चिंतक तीनों रूपों में सुशोभित हुए। इनका समाजदर्शन आख्यानक प्रसंगों के माध्यम से व्यक्त हुआ है और इनकी वैचारिक अभिव्यक्ति का ढंग अन्य कवियों से भिन्न रहा है। हिन्दी साहित्य में महात्मा सूरदास को तो बहुत सम्मान मिला, लेकिन महाकवि सूरदास के महत्व की व्याख्या करने वाला आलोचनात्मक विवरण विरल ही है। हर अच्छी कविता की तरह सूरदास की कविता भी श्रद्धा से अधिक समझ की माँग करती है।

नागरी प्रचारिणी सभा, काशी द्वारा प्रकाशित हिन्दी साहित्य के वृहत् इतिहास (भाग-5) के अनुसार - महात्मा सूरदास की लोकरंजनकारी काव्यकृति में हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल का जो कृष्णकाव्य समाहित है, वह प्राणवंत, उल्लासमय, सत्यसुन्दर एवं मांगलिक भावों के प्रकाशपुंज से ओतप्रोत है

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का मानना है कि- "सूरदास जी अपने भाव में मग्न रहने वाले थे, अपने चारों ओर की परिस्थिति की आलोचना करने वाले नहीं। संसार में क्या हो रहा है, लोक की प्रवृत्ति क्या है, समाज किस ओर जा रहा है, इन बातों की ओर उन्होंने अधिक ध्यान नहीं दिया।ष् इस विचार से असहमति प्रकट करते हुए डॉ. बलराम तिवारी का अभिमत है कि- ष्कबीर घाव पर सीधे नश्तर लगाते हैं और चीर-फाड़कर रख देते हैं। सूर पके घाव में सूई चुभाते हैं और मवाद बहा देते हैं। छुआ-छूत, वर्ग-भेद आदि पर कबीर की लाठी-मार शैली सूर के लिए निरर्थक है। सूर की शैली हास-परिहास के कथात्मक सन्दर्भ द्वारा अनुभूति और संवेदना की यूंटी पिलाकर रोग का उपचार करने की है।

उपसंहार

वर्तमान समय की सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक समस्याओं से ग्रसित भारतीय समाज को आवश्यकता है भक्तिकाल के संत कवियों द्वारा लिखित रचनाओं के मार्ग को अपनाना, क्योंकि भक्तिकालीन साहित्य की आध्यात्मिक और सामाजिक प्रासांगिकता कभी समाप्त नहीं हो सकती। यह साहित्य हिन्दी का वह साहित्य है, जिसमें विचारों की कालजयी धारा मौजूद है। इसलिए आज और आज से आगे की दुनिया में जो भी सामाजिक समस्याएँ आयेंगी उनका मानवीय समाधान

www.ignited.in

इस भक्तिकालीन साहित्य की विविध धाराओं की रचनाओं में माजूद है। कबीर, जायसी, तुलसी और सूर जैसे हिन्दी साहित्य के भक्त कवियों द्वारा विरचित वैचारिक परिदृश्य आज आधुनिक समाज को एक गहरा और मानवीय विश्राम देता है, जो मनुष्य की आध्यात्मिक चेतना की शान्ति और सद्भाव की प्रमुख आवश्कता है। जीवन का अर्थ केवल इतना ही नहीं कि हम सुख-समृद्धि से भर जाए, बल्कि जीवन का वास्तविक अर्थ है कि हम दूसरा के जीवन को अपनी वैचारिक क्षमता से सुख-शान्ति और समृद्धि से भर दें।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूचि

[1] कबीर ग्रंथावली- संपादक, श्यामसुन्दर दास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, 26 वाँ संस्करण, संवत् 2070 वि.

[2] कबीर ग्रंथावली (सटीक) संपादक, रामकिशोर शर्मा, लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिग, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद-211001, बारहवाँ संस्करण : 2018

[3] कबीर ग्रंथावली- संपादक, माताप्रसाद गुप्त, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण : 1969

[4] कबीर वचनावली- अयोध्या सिंह उपाध्याय श्हरिऔधश्, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, 12वों संस्करण, संवत् : 2021 . गीतावली रू तुलसीदास-प्रकाशक, गीताप्रेस, गोरखपुर, संवत् : 2074, 41वाँ पुनर्मुद्रण

[5] जायसी ग्रंथावली- संपादक, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, चैदहवाँ संस्करण, संवत् 2028

[6] तुलसी ग्रंथावली- संपादक, रामचन्द्र शुक्ल एवं भगवानदीन, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, प्रथम संस्करण संवत् : 2034 वि.

[7] दोहावली रू तुलसीदास- प्रकाशक, गीताप्रेस, गोरखपुर, संवत् : 2073, 58वाँ पुनर्मुद्रण

[8] पद्मावत- मलिक मुहम्मद जायसी, टीका, वासुदेवशरण अग्रवाल, लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद-211001, संस्करण : 2016

[9] विनय पत्रिका रू तुलसीदास (सरल भावार्थसहित)- प्रकाशक, गीताप्रेस, गोरखपुर, संवत् रू 2073, 7वाँ पुनर्मुद्रण

[10] सूर ग्रंथावली- अखिल भारतीय विक्रम परिषद, काशी, 63/43, उत्तर बेनियाबाग, वाराणसी, प्रथम आवृति संवत् : 2031

[11] सूरसागर (सटीक)- डॉ. हरदेव बाहरी, लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी

[12] बिल्डिग, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद-211001, संस्करण : 2015 श्रीरामचरितमानस

[13] तुलसीदास- प्रकाशक, गीताप्रेस, गोरखपुर, संवत् : 2071, दौ सौ अठहत्तरवौं पुनर्मुद्रण

Corresponding Author

राजेन्द्र कुमार पिवहरे*

सहायक प्राध्यापक (हिन्दी)

शासकीय महाविद्यालय वेंकटनगर जिला - अनूपपुर(म.प्र.)

अवधेश प्रताप सिंह वि०वि०रीवा (म.प्र.)